मराठी दलित कविता और मानवाधिकार

–डॉ. शिराजोदीन
अतिथि प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
सरकारी प्रथम श्रेणी महिला महाविद्यालय, बीदर।
ईमेल : drshirajoddin@gmail.com

शोधसार

मराठी दलित कविता भारतीय दलित साहित्य की एक क्रांतिकारी धारा है, जो जातीय भेदभाव, सामाजिक शोषण, धार्मिक पाखंड और आर्थिक असमानता के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बनकर उभरी। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से प्रेरित यह कविता केवल पीड़ा का चित्रण नहीं करती, अपितु समता, स्वतंत्रता, गरिमा और मानवाधिकारों की मांग को जीवन का आधार बनाती है। मराठी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार नामदेव ढसाल, दया पवार, अर्जुन डांगले, हिरा बनसोडे, ज्योति लांजेवार आदि की रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अधिकारों की चर्चा प्रमुख रही है। यह शोधालेख, कविताओं के चयनित अंशों के आधार पर मानवाधिकारों के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करता है तथा इनकी समकालीन प्रासंगिकता पर प्रकाश डालता है।

बीज शब्द : मराठी दलित कविता, मानवाधिकार, जातीय भेदभाव, आंबेडकरवाद, विद्रोह, समता, दलित पैंथर।

शोध प्रविधि : अनुसंधान की सामाजिक पद्धति के साथ–साथ विश्लेषणात्मक, समीक्षात्मक एवं आलोचनात्मक पद्धतियों का अनुसरण किया गया है।

शोध विस्तार

आधुनिक भारतीय साहित्य में दलित साहित्य एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में उभरा है। विशेष रूप से मराठी दलित साहित्य ने 1960–70 के दशक में दलित पैंथर आंदोलन के माध्यम से एक नई क्रांतिकारी चेतना को जन्म दिया है। यह साहित्य केवल व्यक्तिगत पीड़ा का वर्णन नहीं है, बल्कि सदियों से चले आ रहे वर्णव्यवस्था आधारित शोषण के विरुद्ध एक संगठित विद्रोह है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों– समता, स्वतंत्रता, बंधुता और न्याय ने इस साहित्य को दार्शनिक आधार प्रदान किया है। इस संदर्भ में विशेष रूप से मराठी दलित कविता उल्लेखनीय है, जो भारतीय दलित साहित्य की सबसे सशक्त धारा मानी जाती है।

मानवाधिकारों की अवधारणा संयुक्त राष्ट्र के सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणापत्र (1948) तथा भारतीय संविधान में निहित है। ये अधिकार जीवन, स्वतंत्रता, गरिमा, समानता और शोषण से मुक्ति जैसे मूल सिद्धांतों पर आधारित हैं। मराठी दलित कविता इन अधिकारों को कानूनी दस्तावेज़ों से आगे ले जाकर जीवन की वास्तविकता में स्थापित करने का प्रयास करती है। कवि जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति के नाम पर होने वाले शोषण–अत्याचारों पर प्रकाश डालते हुए, एक नए मानवीय समाज की स्थापना करने प्रयास करते हैं। इन प्रमुख मराठी दलित कवियों में नामदेव ढसाल, दया पवार, अर्जुन डांगले, हिरा बनसोडे, ज्योति लांजेवार आदि की कविताएँ मानवाधिकारों को प्रस्तावित करने में महत्वपूर्ण हैं।

दलित चेतना और साहित्यिक आंदोलन

मराठी दलित साहित्य का उदय आधुनिक भारत के दलित विमर्श की उस व्यापक सामाजिक–राजनीतिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है, जो मुख्यतः डॉ. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व वाले आंदोलनों से प्रेरित हुआ। आंबेडकर ने हिंदू वर्णव्यवस्था की कठोरता के विरुद्ध संघर्ष को न केवल राजनीतिक पटल पर, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक स्तर पर भी रूपांतरित किया, जिससे दलित समुदाय में एक गहन आत्मजागृति का संचार हुआ। इस प्रक्रिया में सन् 1927 का मनुस्मृति दहन एक प्रतीकात्मक विद्रोह के रूप में उभरा, जहाँ आंबेडकर ने ब्राह्मणवादी ग्रंथों की अस्पृश्यता–समर्थक मान्यताओं को सार्वजनिक रूप से अस्वीकार किया। इसी क्रम में महाड़ सत्याग्रह (1927) ने दलितों को सार्वजनिक जलाशयों तक पहुँच का अधिकार दिलाया, जबकि पूना पैक्ट (1932) ने राजनीतिक प्रतिनिधित्व के द्वार खोले। इन आंदोलनों ने दलित चेतना को जागृत कर सामाजिक न्याय की माँग को केन्द्र में स्थापित किया। आंबेडकर का सन् 1956 में नागपुर में लाखों अनुयायियों समेत बौद्ध धम्म अपनाना इस प्रक्रिया का चरमोत्कर्ष था। इससे दलितों को हिंदू वर्णाश्रम की अमानवीय बेड़ियों से मुक्ति का वैकल्पिक दर्शन प्राप्त हुआ, जो जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध एक सांस्कृतिक क्रांति का प्रतीक बना। इस पृष्ठभूमि में सन् 1972 में दलित पैंथर आंदोलन की स्थापना मराठी दलित साहित्य के लिए मील का पत्थर सिद्ध हुआ। नामदेव ढसाल, राजा ढाले और जे. वी. पवार जैसे युवा कार्यकर्ताओं द्वारा प्रारंभ यह आंदोलन अमेरिकी ब्लैक पैंथर पार्टी (1966) से प्रेरित था, जो नस्लीय उत्पीड़न के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध की वकालत करता था। मराठी दलित पैंथर ने इसे भारतीय संदर्भ में अनुकूलित कर दलितों के आर्थिक शोषण, जातिगत हिंसा और सांस्कृतिक हाशिएकरण के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान किया। इस आंदोलन ने साहित्य को मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम न मानकर सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाया, जिससे दलित लेखन में विद्रोह की नई लहर उभरी।

दलित साहित्य की प्रारंभिक नींव बाबूराव बागुल के कहानी संग्रह *जेव्हा मी जात चोरली हाय (1963)* से पड़ी, जिसे मराठी दलित साहित्य की पहली महत्वपूर्ण रचना माना जाता है। इस संग्रह में बागुल ने दलित जीवन के यथार्थ गरीबी, अस्पृश्यता और दैनिक संघर्ष को आत्मकथात्मक शैली में चित्रित किया, जो परंपरागत मराठी साहित्य की सौंदर्यपरकता से पूर्णतः भिन्न था। इसके बाद नामदेव ढसाल का काव्य संग्रह *गोलपिठा (1972)* ने दलित पैंथर आंदोलन को साहित्यिक आधार प्रदान किया। ढसाल की कविताएँ मुंबई के गोलपिठा जैसे झुग्गी क्षेत्रों की गंदगी, वेश्यावृत्ति और दलित विद्रोह को कठोर, बोलचाल की भाषा में उकेरती हैं, जिसमें 'भाषा की क्रांति' स्पष्ट झलकती है। दया पवार की आत्मकथा *कोंडवाडा (1974)* ने दलित अनुभव को व्यक्तिगत विमर्श के रूप में स्थापित किया, जहाँ लेखक ने अपनी अस्पृश्य जाति के रूप में सामना की गई अपमानजनक घटनाओं को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया। इसी काल में अर्जुन डांगले द्वारा संपादित *दलित कविता (1970)* संकलन ने दलित कवियों की एक पीढ़ी को एकजुट किया, जिसमें शरद पाटिल, नारायण सूर्यवंशी आदि शामिल थे। इन रचनाओं ने मराठी साहित्य की परंपरागत भाषा, छंद और रूपकों को तोड़ते हुए एक नई विद्रोही शैली का सूत्रपात किया। दलित कविता में संस्कृतनिष्ठ मराठी के स्थान पर स्थानीय बोलियाँ, अश्लील शब्दावली और यथार्थवादी चित्रण प्रमुख हुए, जो ब्राह्मणवादी सौंदर्यबोध की आलोचना करता था। उदाहरणस्वरूप, ढसाल की पंक्तियाँ– "तुम्ही माझ्या गंधीच्या डोळ्यांत / रक्ताच्या धुक्यांचा वर्षाव करा"– दलित क्रोध की तीव्रता को प्रतिबिंबित करती हैं। इस प्रकार, मराठी दलित साहित्य न केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बना, अपितु सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी साधन, जो आज भी भारतीय दलित विमर्श को प्रभावित करता है।

सामाजिक अधिकार: जातीय भेदभाव और छुआछूत का विरोध

जातीय भेदभाव एवं छुआछूत का विरोध डॉ. आंबेडकर के सामाजिक आंदोलनों का केंद्रीय तत्व रहा है। सन् 1927 के मनुस्मृति दहन ने ब्राह्मणवादी अस्पृश्यता को प्रतीकात्मक रूप से अस्वीकार किया, जबकि महाड़ सत्याग्रह ने दलितों को सार्वजनिक जलाशयों का अधिकार दिलाया। सन् 1956 का बौद्ध धम्म ग्रहण वर्णव्यवस्था से पूर्ण मुक्ति का प्रतीक बना, जिसने दलित विमर्श को सशक्त किया। इसी दिशा में मराठी दलित कविता सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा के अधिकार को सर्वोच्च स्थान देती है। जातीय भेदभाव को ये कविताएँ मानवता का सबसे बड़ा शत्रु मानती हैं। इस संदर्भ में हिरा बनसोडे की कविता प्रासंगिक है। वे लिखती हैं–

"विश्व में कहाँ नहीं, वैसा भेद यहाँ देखो

"विश्व में कहाँ नहीं, वैसा भेद यहाँ देखो

जन्म से ही वर्ण निश्चित होता

यह हिंद देश मेरा

ऊंचा पद मिले भट्टों को

अन्य सभी नीच बताएँ

धर्म के नाम पर लड़े आपस में

यह हिंद देश मेरा

मनुष्य को पशु से हीन, इन्होंने यहाँ बनाया

क्या वही आर्यावर्त कहलाता

यह हिंद देश मेरा।"

उपरोक्त पंक्तियाँ मराठी दलित साहित्य की विद्रोही परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें हिंदू वर्णव्यवस्था की कटु आलोचना प्रमुख है। प्रारंभिक पंक्ति 'विश्व में कहाँ नहीं। वैसा भेद यहाँ देखो' वैश्विक संदर्भ स्थापित कर भारत की जातीय असमानता को उजागर करती है। 'जन्म से ही वर्ण निर्धारित होता' जन्मजात जातिवाद की निंदा करता है, जबकि 'ऊंचा पद मिले भट्ट को अन्य सभी नीच बताएँ' ब्राह्मणवादी वर्चस्व पर प्रहार है। 'धर्म के नाम पर लड़े आपस में' धार्मिक विभाजन को चित्रित करता है, और 'मनुष्य को पशु से हीन इन्होंने यहाँ बनाया' दलितों की अमानवीय स्थिति को रेखांकित करता है। अंतिम पंक्ति 'क्या वही आयार्वत कहलाता यह हिंद देश मेरा' पौराणिक 'आर्यावर्त' की पवित्रता पर व्यंग्य कर राष्ट्र–विरोधी हिंदुत्व को चुनौती देती है। भाषा सरल, बोलचाल वाली एवं प्रत्यक्ष है, जो दलित कविता की यथार्थवादी शैली को प्रतिबिंबित करती है। यह आंबेडकरवादी चेतना से प्रेरित होकर सामाजिक न्याय की माँग उठाती है।

हिंदू जातीय व्यवस्था में गुलामी एवं बेगारी दलित समुदायों पर थोपी गईं संरचनात्मक शोषण प्रथाएँ रही हैं, जिन्हें मनुस्मृति जैसे ब्राह्मणवादी ग्रंथों ने विधिक मान्यता प्रदान की। जन्मजात शूद्र एवं अछूतों को बेगार मूल्यहीन, बाध्यकारी श्रम के रूप में उच्च वर्णों की सेवा के लिए विवश किया जाता था, जो आर्थिक दासता का प्रतीक था। यह प्रथा न केवल श्रम शोषण तक सीमित रही, अपितु सामाजिक अपमान एवं अमानवीकरण का साधन बनी, जहाँ दलितों को पशुओं से भी निम्न स्तर का माना गया। इस संदर्भ में हिरा बनसोडे गुलामी और बेगारी को चुनौती देते हुए कहती है–

"इस गुलामी को तोड़ो और बुरा काम छोड़ो

न सहो किसी का जुल्म न हो किसी के गुलाम

छोड़ दो नीच काम सारे।"

उपरोक्त पंक्तियाँ गुलामी एवं बेगारी के विरुद्ध मुक्ति–आह्वान को प्रतिबिंबित करती हैं। कवयित्री ने इसमें ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था की संरचनात्मक दासता का प्रत्यक्ष खंडन किया है साथ ही दलित समाज को आत्मसम्मान के प्रति जागरूक करने का प्रयास किया है।

भारतीय ग्रामीण समाज में छुआछूत जड़ता का प्रतीक है, जो हिंदू वर्णव्यवस्था से उत्पन्न अस्पृश्यता प्रथा पर आधारित है। दलित बस्तियों को गाँव के किनारे बसाया जाता था, जहाँ उन्हें कुओं, मंदिरों और सार्वजनिक स्थानों से वंचित रखा जाता। दैनिक जीवन में छुआछूत विवाह, भोजन, श्रम विभाजन और सामाजिक मेलजोल तक विस्तृत थी।

डॉ. आंबेडकर ने इसे ब्राह्मणवादी मनुस्मृति की देन माना, जिसका विरोध महाड़ सत्याग्रह (1927) में हुआ। ग्रामीण दलितों को बेगारी, जातीय हिंसा और आर्थिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता था। आजादी के बाद अनुच्छेद 17 ने इसे गैरकानूनी घोषित किया, किंतु ग्रामीण स्तर पर सामाजिक मान्यताएँ बनी हुई हैं। दलित पैंथर आंदोलन ने साहित्यिक विद्रोह के माध्यम से इसे चुनौती दी। छुआछूत उन्मूलन हेतु शिक्षा, आर्थिक सशक्तिकरण और सामाजिक जागरण आवश्यक है। दया पवार अपनी कविता में गांव में की जाने छुआछूत के अनुभवों का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखते हैं–

"ऐ महान देश कितने दिन चलेगा

तुम्हारा यह पंक्ति भेद

हम गाँव के बाहर रहते हैं

इस में हमारा क्या दोष है?

देश के बाहर तो नहीं रहते?

हमारी पंक्ति भोज सदैव देर से बैठती है

वह भी कूड़े–करकट के ढेर पर।"

उपरोक्त पंक्तियों में ग्रामीण छुआछूत एवं सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध मानवीय गरिमा–सम्पन्न जीवन की मांग तीव्र रूप से व्यक्त हुई है। 'ऐ महान देश कितने दिन चलेगा / तुम्हारा यह पंक्ति भेद' में राष्ट्र–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में जातीय विभेदभाव को उसके पतनकारी स्वरूप में चित्रित किया गया है। 'हम गाँव के बाहर रहते हैं / इस में

हमारा क्या दोष है?' दलित बस्तियों के जबरन हाशिएकरण पर प्रश्नवाचकता प्रस्तुत करती हैं, जो अस्पृश्यता –जनित संरचनात्मक हिंसा को उद्घाटित करती हैं। 'देश के बाहर तो नहीं रहते?' पूर्ण नागरिकता–अधिकारों का दृढ़ दावा स्थापित करती हैं, जो समानतावादी चेतना से संनादित हैं। 'हमारी पंक्ति भोज सदैव देर से बैठती है / वह भी कूड़े–करकट के ढेर पर' सामाजिक भोजों में अंत्यस्थ स्थान एवं अपमानास्पद अवस्था का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती हैं, जो मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना पर बल देता है। यह रचना महाड़ सत्याग्रह एवं दलित पैंथर आंदोलन से प्रेरित है, जहाँ सांस्कृतिक समावेशिता का दावा साहित्यिक प्रतिरोध का स्वरूप ग्रहण करता है तथा सरल बोलचाल भाषा सामूहिक जागरण एवं क्रोध का प्रभावी माध्यम बनती है।

आर्थिक अधिकार: शोषण और बेगारी का खंडन

शोषण और बेगारी का खंडन मराठी दलित साहित्य का मूल स्वर है, जो ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था द्वारा थोपी गई जातीय दासता के विरुद्ध आंबेडकरवादी विद्रोह को साहित्यिक रूप देता है। इस संदर्भ में नामदेव ढसाल की कविता बेगारी की अमानवीयता को इस प्रकार उजागर करती है–

"मैं बढ़ता रहा
रास्ते की गन्दगी पर
पाँच पैसा दे दो
पाँच गाली ले लो
कहता हुआ
दरगाह के रास्ते पर।"

उपरोक्त पंक्तियाँ शहरी दलित जीवन में बेगारी एवं जातीय अपमान की कटु यथार्थता को उजागर करती हैं। नामदेव ढसाल का गोलपीठा संग्रह (1972) की यह रचना दलित पैंथर आंदोलन की विद्रोही चेतना को बोलचाल भाषा में व्यक्त करती है। सरलता के साथ कठोर यथार्थ का चित्रण आंबेडकरवादी प्रतिरोध को साहित्यिक रूप देता है। बेगारी का यह चित्रण न केवल शोषण–विरोध है, अपितु मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना का संकल्प भी है। इसी क्रम में ज्योती लांजेवार की कविता प्रासंगिक है। वे लिखती हैं–

"आँखों में आसुओं का पावस भर कर
तपती धूप जैसे जिंदगी
दोपहर का सूरज ढलने तक

बीनी हुई कपास पोटली में संभाले

एक एक कतार दर–कतार

बाल–बच्चों का भविष्य संवारते

तुझे देखा मैंने माँ"

उपरोक्त पंक्तियाँ 'माँ' कविता से ली गई हैं, जो दलित महिलाओं के आर्थिक संघर्ष को चित्रित करती हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से, ये माँ की जीवन–यात्रा को तपती धूप की तरह कष्टदायक दर्शाती हैं, जहाँ वह आंसू रोककर (भावनात्मक दमन) दिनभर कठोर श्रम करती है। 'बीनी हुई कपास पोटली में संभाले' गरीबी और न्यूनतम संसाधनों का प्रतीक है, जहाँ माँ सीमित मजदूरी से बच्चों का भविष्य संवारने की कोशिश करती है। दलित महिलाएँ असंगठित क्षेत्र में बेगारी जैसी मजदूरी करती हैं, जहाँ शारीरिक श्रम के बदले न्यूनतम वेतन मिलता है। यह कविता आर्थिक अधिकारों की मांग करती है, जैसे उचित मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा और शिक्षा, जो दलित समुदाय की आर्थिक मुक्ति के लिए आवश्यक हैं। कुल मिलाकर, ये पंक्तियाँ पूंजीवादी शोषण और लिंग–जाति आधारित असमानता पर प्रकाश डालती हैं, जहाँ महिलाएँ आर्थिक विकास की नींव हैं लेकिन लाभ से वंचित रहती हैं।

निष्कर्ष

अतः मराठी दलित कविताएँ अमानवीयता के विरुद्ध एक प्रबल प्रतिरोध का रूप धारण करती हैं। अनेक अम्बेडकरवादी व प्रगतिशील कवियों कविताएँ भारतीय दलित समाज की पीढ़ी–दर–पीढ़ी सहन की गई यातना, अभाव, तिरस्कार एवं सामाजिक बहिष्कार को अभिव्यक्त करती हैं, जो समानता, सम्मान एवं न्याय जैसे मौलिक मानवाधिकारों की प्राप्ति की अपील करती हैं। डॉ. भीमराव आंबेडकर के दर्शन से प्रभावित ये कविताएँ अस्पृश्यता, शोषण तथा राजनीतिक उत्पीड़न की निंदा करती हैं, साथ ही दलितों को दयनीय स्थिति से मानवीय स्तर तक उन्नत करने की प्रक्रिया को उजागर करती हैं। ये रचनाएँ व्यक्तिगत कष्टों की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त सामूहिक जागृति को प्रोत्साहित करती हैं। मराठी का दलित काव्य प्रमाणित करता है कि साहित्य मानवाधिकारों की रक्षा का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है और हाशिए के समुदायों को सशक्तिकरण प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, संस्करण–1996, पृ.सं. 96

वही, पृ.सं. 97

समकालीन भारतीय साहित्य पत्रिका, अंक–10,अक्टूबर–दिसम्बर–1982

https://kavitakosh.org/kk/मैं_बढ़ता_रहा_/_नामदेव_ढसाल

https://poshampa.org/maa-by-jyoti-lanjewar/